आमने-सामने

मैनुअल स्केवेन्जिंग-कब तक?

नंदिता सेनगुप्ता

सरोज को तसल्ली है कि उसकी उल्टियां अब बंद हो गई हैं। रोज़ाना उल्टियां करना उसके जीवन का हिस्सा बन गया था। वह बारह वर्ष की उम्र से पंजाब के अम्बाला शहर में शुष्क पाखानों से मल निकालने का काम कर रही है। इस काम से जुड़ी वह अपने परिवार की तीसरी पीढ़ी है। वह रोज़ाना दो सौ पाखानों की सफ़ाई करती थी और बिना नागा रोज़ उल्टियां करती थी। बदबू से उसे चक्कर आते थे परन्तु काम करना उसकी मजबूरी थी। आज सरोज के चेहरे पर मुस्कान है जबकि आंखें आज भी उन दिनों के मंज़र को यदा-कदा सामने ले आती हैं। पिछले साल सरोज को इस काम से निजात मिल गई है पर 'उस ज़िदंगी' की यादों ने आज भी उसका पीछा नहीं छोड़ा है। अब वह तीन घरों में घरेलू कामगार का काम करती है। पूछने पर कि क्या अब जीवन में सब कुछ ठीक है वह जवाब देती है—'अभी और बहुत हैं जिनको इस काम से मुक्ति दिलाने में मदद की ज़रूरत है।'

हाथों से मैला साफ़ करने या मैनुअल स्केवेन्जिंग की प्रथा के उन्मूलन की अंतिम तारीख भी छः महीने पहले निकल गई है। एक बार फिर भारत ने इसको भुला दिया है। 1993 में इस प्रथा को कानूनन असंवैधानिक घोषित कर दिया गया था परन्तु यह आज भी इस देश के कई हिस्सों में दिखाई पड़ती है। राजधानी दिल्ली में भी मौजपुर या नन्दनगरी के दूर दराज़ इलाकों में हाथों से मल की सफ़ाई का काम किया जाता है।

ऐसा नहीं है कि बदलाव लाने के लिए कोई भी प्रयास नहीं किए गए हैं। हरिद्वार में मैनुअल स्केवेन्जिंग कर्मचारियों में अस्सी प्रतिशत महिलाएं हैं जिन्होंने अपनी टोकरियां जलाकर प्रतीकात्मक विरोध का प्रदर्शन किया है। अन्य क्षेत्रों में उन्होंने धरना, जुलूस, ज़िला मजिस्ट्रेट के दफ्तर के सामने नारेबाज़ी, सामुदायिक गोष्ठियां इत्यादि आयोजित की हैं। दिल-दहलाने वाले एक वाकये में कर्नाटक के सावानुर कस्बे में एक कामगार समूह ने मल को अपने शरीर पर लगाकर ज़िला मजिस्ट्रेट के दफ्तर के सामने प्रदर्शन भी किया है।

टोकरी में मल ढोती महिला

'इसके बावजूद सरकारी अफसरों ने इन विरोधों को नज़रअंदाज़ किया'— सफ़ाई कर्मचारी आंदोलन के एक कार्यकर्ता ने बताया दलितों में सबसे निचली सामाजिक पायदान पर आने वाले डोम, बाल्मिकी व भंगी समूह के अनेक कर्मचारियों को हाथ से मल उठाने, सर पर मैला ढोने व गटर की सफ़ाई करने का काम सौंपा जाता है। जो लोग मैनुअल स्केवेन्जिंग व सफ़ाई के अन्य कामों से जुड़े हैं वे विभिन्न राज्यों के दलित समूहों से आते हैं— पर हर राज्य में वे अपने नाम तथा काम से पहचाने जाते हैं जो उन्हें अपनी जातीय पहचान के कारण मजबूरीवश करना पड़ता है। उदाहरण के लिए दिल्ली में 'भंगी' जिसका शाब्दिक अर्थ 'मायूस आत्मा' है और जो दलितों में सबसे

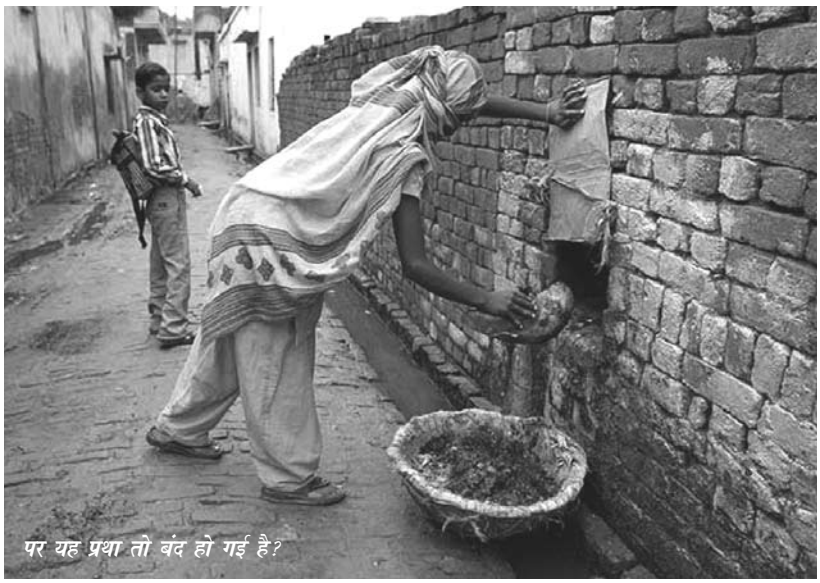

पर यह प्रथा तो बंद हो गई है?

शोषित समूह है को 'पुनर्वास' के बाद भी रेल की पटरी की सफ़ाई का ज़िम्मा दिया जाता है।

भारत में जम्मू-कश्मीर से तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल से राजस्थान तक नंगे हाथों में एक टीन का टुकड़ा लेकर टोकरी में मल इकट्ठा करने की अमानवीय प्रथा आज भी विद्यमान है। दिल्ली सरकार की *सामाजिक सुविधा संगम* के अनुसार शहरी भारत का 37 प्रतिशत मानव मल असुरक्षित तरीकों से फैंक दिया जाता है और साढ़े बारह करोड़ घरों में निकास व्यवस्थाओं का अभाव है। दलित कार्यकर्ता रजनी तिलक बताती हैं कि 'दिल्ली के बाहरी इलाकों में शौचालय तो हैं परन्तु निकास व्यवस्था न होने के कारण मल घर के बाहर एक खुली नाली में धकेल दिया जाता है।'

चेन्नई की एक अन्य सामाजिक कार्यकर्ता जोड़ती हैं कि 'तमिलनाडु राज्य ने तीन वर्ष पूर्व ऐलान किया था कि मैनुअल स्केवेन्जिंग प्रथा खत्म हो चुकी है, पर यह सरासर झूठ है।'

आज हमारे देश में कितने लोग इस अमानवीय काम को करते हैं शायद किसी को नहीं पता। सरकार तो यह भी मानने को तैयार नहीं है कि 'आज के दौर व दिन' में ऐसी प्रथा मौजूद है। 1993 के बाद जब कोई मामला अदालत तक ले जाया जाता है तब सरकार सामाजिक कार्यकर्ताओं पर यह साबित करने की ज़िम्मेदारी डाल देती है कि दलित समूह इस शर्मनाक काम को करने के लिए बाध्य किया जाता है।

स्वतंत्र भारत में मैनुअल स्केवेन्जिंग को असंवैधानिक घोषित करने में छयालीस वर्ष लगे और जनवरी 2011 तक मात्र पांच राज्यों ने इस प्रथा के ख़िलाफ़ कानून पारित किए। *सेंटर फ़ॉर द स्टडी ऑफ़ डेवलपिंग सोसाइटी* के योगेन्द्र यादव के अनुसार 'राजनैतिक इच्छा शक्ति का अभाव है। स्वच्छाकार समुदाय एक प्रबल वोट बैंक नहीं है लिहाज़ा किसी का ध्यान इस ओर नहीं जाता। इन शोषित समूहों को दलित समाज में भी अस्पर्श्य माना जाता है'। लेखक-कार्यकर्ता आनंद तेलमुम्बदे बताते है, 'यह रातों-रात खत्म नहीं होगी। यह कोई बेहद बड़ी समस्या नहीं है अगर हम इसे सुलझाना चाहें। पर इस मुद्दे के आसपास फैले जटिल राजनैतिक ताने-बाने के कारण यह समझना मुश्किल है कि असल में हो क्या रहा है।'

पिछले वर्ष राष्ट्रीय सलाहकार समिति ने इस मुद्दे को इस आधार पर उठाया था कि ज़मीनी सच्चाई व राज्य के दावों ने नए कानून के साथ-साथ कुछ ठोस प्रस्ताव भी दिए हैं। समिति के एक सदस्य हर्ष मंदर के अनुसार 'यह सिर्फ़ स्वच्छता का मुद्दा नहीं है। यह सम्मान और मूलभूत बुनियादी अधिकारों का भी मसला है।'

तमाम प्रयासों के बावजूद इस प्रथा को जड़ से मिटाने में कामयाबी अभी दूर है। 'पिछले वर्ष कार्यकर्ताओं के प्रयासों को भारी झटका लगा जब सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ मामलों को वापस उच्च न्यायालय वापस भेज दिया और दोबारा नई कार्यवाही करने की हिदायत दी। पांच महीनों में इक्कीस मामले उच्च न्यायालय भेजे गए थे। अदालत पुनर्वास प्रयासों को कार्यान्वित करने के लिए बिल्कुल सटीक आंकड़े चाहती है,' सर्वोच्च न्यायालय की एक वकील ने बताया।

अभी मंज़िल दूर है और रास्ता लम्बा है। सवाल संख्याओं का नहीं है। अब राष्ट्रीय सलाहकार समिति ने मार्च 2012 तक इस समस्या को जड़ से मिटाने के निर्देश जारी किए है। पर क्या इससे कोई फ़र्क़ पड़ेगा कहना मुश्किल है?

साभारः टाइम्स ऑफ़ इण्डिया

***नंदिता सेनगुप्ता** टाइम्स ऑफ़ इण्डिया में पत्रकार हैं।*